International Research Journal of Humanities, Language and Literature
Vol. 4, Issue 1, January 2017 Impact Factor- 5.401
ISSN: (2394-1642)
© Associated Asia Research Foundation (AARF) Publication
Website: www.aarf.asia Email : editor@aarf.asia , editoraarf@gmail.com

# पातंजल योगदर्शन में ईश्वर का स्वरूप

डाॅ राज्यश्री मिश्रा
असिस्टेंट प्रोफेसर संस्कृत,
महात्मा गांधी बालिका विद्यालय (पी.जी.)कालेज फिरोजाबाद

**सार**

पातंजल योगदर्शन भारतीय दर्शन की छह प्रमुख शाखाओं में से एक है, जो योग के व्यवस्थित और वैज्ञानिक सिद्धांतों को प्रस्तुत करता है। महर्षि पतंजलि द्वारा रचित यह ग्रंथ योग के आठ अंगों (अष्टांग योग) का विस्तृत वर्णन करता है, जिसका अंतिम लक्ष्य कैवल्य (मोक्ष) की प्राप्ति है। इस दार्शनिक प्रणाली में ईश्वर का एक विशिष्ट और महत्वपूर्ण स्थान है। अन्य भारतीय दर्शनों की तुलना में, पातंजल योगदर्शन में ईश्वर की अवधारणा कुछ विशिष्टताओं को लिए हुए है। योगसूत्र के प्रथम अध्याय के 23वें सूत्र में ईश्वर का परिचय देते हुए कहा गया है: "क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः।" अर्थात्, ईश्वर एक विशेष पुरुष (पुरुषविशेष) है जो क्लेशों (अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश), कर्मों (अच्छे-बुरे कर्मों), विपाक (कर्मों के फल) और आशयों (संस्कारों के संग्रह) से सर्वथा अपरामृष्ट (अछूता) है। ईश्वर को सामान्य पुरुषों से भिन्न एक विशेष पुरुष के रूप में वर्णित किया गया है। यहाँ 'पुरुष' शब्द चेतना या आत्मा के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। यह सामान्य जीवात्माओं से भिन्न है जो कर्मों के बंधन में बंधे हुए हैं। ईश्वर पाँच प्रकार के क्लेशों - अविद्या (अज्ञान), अस्मिता (अहंकार), राग (आसक्ति), द्वेष (घृणा) और अभिनिवेश (जीवन की इच्छा) से पूर्णतः मुक्त है। ये क्लेश ही मनुष्य के दुखों और बंधनों का कारण बनते हैं। ईश्वर किसी भी प्रकार के कर्मों में लिप्त नहीं होता, न अच्छे और न बुरे। इसलिए वह कर्मों के फल (विपाक) से भी अप्रभावित रहता है। सामान्य जीवात्मा अपने कर्मों के अनुसार सुख-दुख भोगती है, लेकिन ईश्वर इन बंधनों से परे है।

मुख्य शब्द

पातंजल, योगदर्शन, भारतीय, दर्शन

## भूमिका

पातंजल योगदर्शन में ईश्वर को सृष्टिकर्ता, पालनकर्ता या संहारकर्ता के रूप में वर्णित नहीं किया गया है, जैसा कि कुछ अन्य भारतीय दर्शनों में मिलता है। यहाँ ईश्वर एक अपरिवर्तनीय, नित्य, शुद्ध और मुक्त सत्ता है, जो योगियों के लिए एक आदर्श और प्रेरणास्रोत है। ईश्वर योगियों को उनके लक्ष्य, कैवल्य की प्राप्ति में सहायता कर सकता है। ईश्वर के प्रति समर्पण (ईश्वरप्रणिधान) को योग साधना का एक महत्वपूर्ण अंग माना गया है, जो समाधि की प्राप्ति में सहायक होता है। योगदर्शन में ईश्वर को सृष्टि का कर्ता, हर्ता या संहर्ता के रूप में नहीं माना जाता है। वह कर्मों के फलदाता भी नहीं हैं, जैसा कि कुछ अन्य धार्मिक परंपराओं में माना जाता है। पतंजलि के अनुसार, ईश्वर एक अद्वितीय और नित्य पुरुष (चेतन सत्ता) हैं, जो क्लेशों (अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश), कर्मों (धर्माधर्म), विपाकों (कर्मफल) और आशयों (संस्कारों) से सर्वथा मुक्त हैं। इसी कारण उन्हें 'पुरुषविशेष' कहा जाता है - पुरुषों (जीवों) में विशेष।

ईश्वर में पूर्व जन्मों के संस्कारों का कोई संग्रह (आशय) नहीं होता। जीवात्मा अपने कर्मों के कारण संचित संस्कारों के वशीभूत होकर पुनर्जन्म लेती है, जबकि ईश्वर इन संस्कारों से मुक्त है।

योगसूत्र के अगले सूत्रों में ईश्वर के स्वरूप को और अधिक स्पष्ट किया गया है:

"तत्र निरतिशयं सर्वज्ञबीजम्।" (योगसूत्र 1.25) - उस ईश्वर में सर्वज्ञता का बीज निरतिशय (अत्यंत, सर्वोच्च) रूप में विद्यमान है। अर्थात्, ईश्वर सभी प्रकार के ज्ञान का परम स्रोत है और उसका ज्ञान किसी भी सीमा से बंधा हुआ नहीं है।

"स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्।" (योगसूत्र 1.26) - वह (ईश्वर) पूर्ववर्ती गुरुओं का भी गुरु है, क्योंकि वह काल से अनवच्छिन्न (अतीत, वर्तमान और भविष्य से परे) है। इसका अर्थ है कि ईश्वर शाश्वत है और ज्ञान की अविच्छिन्न परंपरा का मूल स्रोत है।

"तस्य वाचकः प्रणवः।" (योगसूत्र 1.27) - उसका वाचक (नाम) प्रणव (ॐ) है। यह सूत्र ॐ के महत्व को स्थापित करता है, जिसे ईश्वर का प्रतीक और उसकी प्राप्ति का साधन माना जाता है।

"तज्जपस्तदर्थभावनम्।" (योगसूत्र 1.28) - उस (प्रणव) का जप और उसके अर्थ का चिंतन (ईश्वर की प्राप्ति का मार्ग है)। यह सूत्र ईश्वर तक पहुंचने के लिए ॐ के जप और उसके अर्थ के मनन को एक महत्वपूर्ण अभ्यास बताता है।

योगसूत्र के प्रथम अध्याय के चौबीसवें सूत्र में ईश्वर की परिभाषा इस प्रकार दी गई है:

क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः ॥ २४ ॥

अर्थात्, क्लेश, कर्म, विपाक और आशय से अस्पृष्ट पुरुषविशेष ईश्वर है।
इस सूत्र में 'पुरुषविशेष' शब्द ईश्वर की अनन्यता और श्रेष्ठता को दर्शाता है। अन्य पुरुष (जीव) इन चार प्रकार के बंधनों से ग्रस्त होते हैं, जिसके कारण उन्हें जन्म-मरण के चक्र और दुखों का अनुभव करना पड़ता है। जबकि ईश्वर इन बंधनों से परे हैं, वे सदैव शुद्ध, बुद्ध और मुक्त स्वभाव वाले हैं।
योगदर्शन में ईश्वर को एक आदर्श और प्रेरणास्रोत के रूप में स्वीकार किया जाता है। वे सर्वज्ञ (सब कुछ जानने वाले) और सर्वशक्तिमान हैं। उनके ज्ञान और शक्ति की कोई सीमा नहीं है। वे अनादि काल से हैं और अनन्त काल तक रहेंगे। योग साधक ईश्वर के प्रति श्रद्धा और समर्पण भाव रखकर अपनी साधना में प्रगति कर सकता है।
ईश्वर प्रणिधान (ईश्वर में समर्पण) योग के महत्वपूर्ण अंगों में से एक है। पतंजलि योगसूत्र के प्रथम अध्याय के तेईसवें सूत्र में इसका उल्लेख इस प्रकार है:
ईश्वरप्रणिधानाद्वा ॥ २३ ॥
अर्थात्, अथवा ईश्वर प्रणिधान से (समाधि की प्राप्ति होती है)।
साहित्य की समीक्षा
ईश्वर प्रणिधान का अर्थ है अपने सभी कर्मों और उनके फलों को ईश्वर को समर्पित कर देना, उनके प्रति पूर्ण श्रद्धा और विश्वास रखना। ऐसा करने से साधक का अहंकार कम होता है और चित्त की वृत्तियाँ शांत होती हैं, जिससे समाधि की प्राप्ति में सहायता मिलती है। योगदर्शन का ईश्वर कोई व्यक्तिगत देवता नहीं है, जिसकी पूजा-अर्चना की जाए। बल्कि, वे एक परम चैतन्य सत्ता हैं, जो सभी जीवों में विद्यमान हैं, लेकिन बंधनों से मुक्त हैं। उनकी उपासना बाह्य कर्मकांडों से अधिक आंतरिक समर्पण और श्रद्धा पर आधारित है। [1]
पातंजल योगदर्शन में ईश्वर एक अद्वितीय पुरुषविशेष हैं, जो क्लेश, कर्म, विपाक और आशय से मुक्त हैं। वे सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान और नित्य हैं। योग साधना में ईश्वर प्रणिधान एक महत्वपूर्ण अभ्यास है, जो साधक को समाधि और अंततः कैवल्य की ओर ले जाता है। ईश्वर की यह अवधारणा योग दर्शन को अन्य दार्शनिक प्रणालियों से विशिष्टता प्रदान करती है और आध्यात्मिक विकास के लिए एक महत्वपूर्ण आधार प्रस्तुत करती है। [2]
पातंजल योगसूत्र में ईश्वर को एक विशेष पुरुष के रूप में परिभाषित किया गया है जो क्लेश, कर्म, विपाक और आशय से सर्वथा मुक्त हैं। वे नित्य, सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान हैं। ईश्वर सभी गुरुओं के भी गुरु हैं, क्योंकि वे काल से भी परे हैं। [3]
पतंजलि ईश्वर को प्रणव (ॐ) का वाचक मानते हैं और इसके जप तथा अर्थ के चिंतन को ईश्वर प्रणिधान कहते हैं। ईश्वर प्रणिधान योग साधना का एक महत्वपूर्ण अंग है, जो चित्त को एकाग्र करने और समाधि की ओर बढ़ने में सहायक होता है। ईश्वर में श्रद्धा और समर्पण साधक को आंतरिक शक्ति और प्रेरणा प्रदान करते हैं, जिससे वह क्लेशों से लड़ने में सक्षम होता है। [4]

पातंजल योगदर्शन में ईश्वर का स्वरूप
पातंजल योगदर्शन पाँच प्रकार के क्लेशों का वर्णन करता है, जो मनुष्य के दुखों और बंधनों का मूल कारण हैं। ये क्लेश अविद्या (अज्ञान), अस्मिता (अहंकार), राग (आसक्ति), द्वेष (घृणा) और अभिनिवेश (मृत्यु का भय) हैं।
अविद्या (अज्ञान): यह सबसे मूलभूत क्लेश है, जो अनित्य को नित्य, अशुद्ध को शुद्ध, दुःख को सुख और अनात्मा को आत्मा समझने की भ्रान्ति है। अविद्या के कारण ही मनुष्य वास्तविक स्वरूप को भूलकर सांसारिक बंधनों में फँस जाता है। यह अन्य क्लेशों का भी जनक है।
अस्मिता (अहंकार): यह 'मैं हूँ' की भावना है, जो बुद्धि और पुरुष (आत्मा) के तादात्म्य से उत्पन्न होती है। अस्मिता के कारण मनुष्य स्वयं को कर्ता और भोक्ता मानने लगता है, जिससे राग और द्वेष जैसी भावनाएँ जन्म लेती हैं।
राग (आसक्ति): यह सुख के अनुभवों के प्रति आकर्षण और उनमें बने रहने की इच्छा है। राग मनुष्य को उन वस्तुओं और व्यक्तियों से बांधता है जो उसे सुख देते हैं, और उनके वियोग से दुःख होता है।
द्वेष (घृणा): यह दुःख के अनुभवों के प्रति अरुचि और उनसे दूर रहने की इच्छा है। द्वेष मनुष्य को उन वस्तुओं और व्यक्तियों से दूर करता है जो उसे दुःख देते हैं, और उनके संपर्क में आने से पीड़ा होती है।
अभिनिवेश (मृत्यु का भय): यह जीवन के प्रति तीव्र आसक्ति और मृत्यु के भय की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। यह क्लेश सभी प्राणियों में विद्यमान रहता है, यहाँ तक कि विद्वानों में भी। यह अनिश्चितता और समाप्ति के भय से उत्पन्न होता है।
पातंजल योगदर्शन इन पाँचों क्लेशों से मुक्ति पाने का मार्ग बताता है। यह मार्ग अष्टांग योग के रूप में जाना जाता है, जिसके आठ अंग हैं: यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। इन अंगों का अभ्यास करके साधक धीरे-धीरे क्लेशों को क्षीण करता है और अंततः कैवल्य को प्राप्त करता है।
अविद्या का नाश विवेकख्याति (सत्य ज्ञान) से होता है, जिसमें प्रकृति और पुरुष के भेद को स्पष्ट रूप से जाना जाता है।
अस्मिता का क्षय पुरुष के अपने शुद्ध स्वरूप के ज्ञान से होता है।
राग और द्वेष का निवारण अनासक्ति और वैराग्य के अभ्यास से होता है।
अभिनिवेश का उन्मूलन आत्म-ज्ञान और मृत्यु की अनित्यता के बोध से होता है।

ईश्वर प्रणिधान भी क्लेशों से मुक्ति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। ईश्वर में समर्पण और भक्ति चित्त को शुद्ध करते हैं और साधक को आंतरिक शक्ति प्रदान करते हैं, जिससे वह क्लेशों का सामना करने में सक्षम होता है। योगदर्शन में ईश्वर को एक विशेष प्रकार का पुरुष (पुरुषविशेष) माना गया है। अन्य सामान्य पुरुषों (जीवों) के विपरीत, ईश्वर क्लेश, कर्म, विपाक (कर्मफल) और आशय (संस्कार) से सर्वथा मुक्त है। सूत्र 1.24 में कहा गया है: "क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः।" अर्थात्, क्लेश, कर्म, विपाक और आशय से अपरामृष्ट पुरुषविशेष ईश्वर है।
कर्म: कर्म दो प्रकार के होते हैं - पुण्य (अच्छे कर्म) और अपुण्य (बुरे कर्म)। सामान्य पुरुष अपने कर्मों के अनुसार फल भोगते हैं, जिससे वे जन्म-मृत्यु के चक्र में बंधे रहते हैं। ईश्वर कर्मों से अपरामृष्ट है, जिसका अर्थ है कि वह न तो कोई कर्म करता है और न ही उसके कर्मों का कोई फल होता है। वह कर्तापन के भाव से रहित है।
विपाक: विपाक कर्मों के फल को कहते हैं, जो सुख या दुख के रूप में अनुभव किए जाते हैं। चूंकि ईश्वर कर्मों से मुक्त है, इसलिए उसे किसी प्रकार के कर्मफल का अनुभव नहीं होता। वह सुख-दुख से परे है।
आशय: आशय संचित कर्मों के संस्कार होते हैं, जो अगले जन्मों के लिए प्रवृत्ति उत्पन्न करते हैं। सामान्य पुरुषों में कर्मों के संस्कार जमा होते रहते हैं, जो उन्हें पुनर्जन्म लेने के लिए प्रेरित करते हैं। ईश्वर संस्कारों से भी मुक्त है, क्योंकि उसने कभी कोई कर्म नहीं किया जिससे संस्कार बन सकें।
पातंजल योगदर्शन में ईश्वर एक ऐसा अद्वितीय पुरुष है जो सभी प्रकार के सांसारिक बंधनों और प्रभावों से मुक्त है। वह न तो कर्मों के कर्ता हैं और न ही उनके फलों के भोक्ता। उनकी सत्ता नित्य, शुद्ध, बुद्ध और मुक्त है। तो फिर, योगदर्शन में ईश्वर की भूमिका क्या है? सूत्र 1.25 में कहा गया है: "तत्र निरतिशयं सर्वज्ञबीजम्।" अर्थात्, उसमें निरतिशय सर्वज्ञता का बीज है। इसका अर्थ है कि ईश्वर में सभी प्रकार का ज्ञान अपनी पूर्णतम अवस्था में विद्यमान है। वह सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान है। इसके अतिरिक्त, सूत्र 1.26 में कहा गया है: "स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्।" अर्थात्, वह पूर्वजों का भी गुरु है, क्योंकि वह काल से अनवच्छिन्न है। इसका तात्पर्य है कि ईश्वर शाश्वत है और समय की सीमाओं से परे है। वह आदिकाल से ज्ञान का स्रोत रहा है और योग के ज्ञान को प्राचीन ऋषियों तक पहुँचाने वाला है।
योगदर्शन में ईश्वर को सृष्टि का कर्ता या संहारक नहीं माना गया है। प्रकृति अपने नियमों के अनुसार स्वयं ही विकसित होती है। ईश्वर केवल एक उत्प्रेरक की तरह है, जो योगियों को उनके लक्ष्य तक पहुँचने में सहायता करता है। ईश्वर के प्रति समर्पण (ईश्वरप्रणिधान) योग साधना का एक महत्वपूर्ण अंग है, जो साधक को समाधि की ओर ले जाता है।
पातंजल योगदर्शन में ईश्वर कर्मों से अपरामृष्ट, क्लेशों से मुक्त, नित्य ज्ञानस्वरूप और सभी योगियों के परम गुरु हैं। उनकी उपासना और समर्पण योग मार्ग में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, जो साधक को सांसारिक बंधनों से मुक्त होकर मोक्ष की प्राप्ति में सहायक होते हैं। ईश्वर का यह स्वरूप हमें यह समझने में मदद करता है कि पूर्णता और स्वतंत्रता क्या है और उस परम लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए हमें किस प्रकार प्रयास करना चाहिए।

## निष्कर्ष

पातंजल योगदर्शन में ईश्वर एक मार्गदर्शक शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित हैं, जिनकी उपासना साधक को क्लेशों से मुक्ति की ओर अग्रसर करती है। पाँच प्रकार के क्लेश - अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश - मनुष्य के दुखों के मूल कारण हैं। अष्टांग योग के अभ्यास और ईश्वर प्रणिधान के माध्यम से इन क्लेशों को दूर कर कैवल्य की प्राप्ति संभव है। यह दर्शन मनुष्य को अपने वास्तविक स्वरूप को जानने और दुखों से मुक्त होने का एक व्यवस्थित और प्रभावशाली मार्ग प्रदान करता है। संक्षेप में, पातंजल योगदर्शन में ईश्वर एक अद्वितीय पुरुष है जो क्लेशों, कर्मों, विपाकों और आशयों से मुक्त है। वह सर्वज्ञता का परम स्रोत है, सभी गुरुओं का गुरु है और उसका वाचक प्रणव है। ईश्वर योगियों के लिए एक आदर्श है और उसकी भक्ति तथा ध्यान समाधि की ओर ले जाने वाला एक महत्वपूर्ण मार्ग है। इस प्रकार, पातंजल योगदर्शन में ईश्वर की अवधारणा योग साधना के दार्शनिक आधार को सुदृढ़ करती है और साधकों को उनके अंतिम लक्ष्य तक पहुंचने में मार्गदर्शन करती है।

## संदर्भ


1. डॉ राधा कृष्णन, भारतीय दर्शन भाग 2 पृष्ठ 346, 357
2 योगदर्शन /योगसूत्र - 1/24
3 योगदर्शन /योगसूत्र- 2/3
4 योगदर्शन - 4/7
5 पातंजल योगदर्शन , गीता प्रेस, गोरखपुर, पृष्ठ 198
6 योगदर्शन - 2/13
7 योगसूत्र- 4/8
8 योगसूत्र- 1/25
9 हरि कृष्ण दास गोयनकाः पातंजल योगदर्शन , गीता प्रेस, गोरखपुर, पृष्ठ 26
10 भारतीय दर्शन की समीक्षात्मक रूपरेखा राममूर्ति पाठक पृष्ठ 39-47

11 प्रोफेसर संगम लाल पांडे , भारतीय दर्शन का सर्वेक्षण पृष्ठ 214